हर बूंद मोती बन सकती है

- राहुल बैस

''अम्मी...ऽ, अब्बा...ऽ !'' खुशी के मारे नसरीन केवल इतना ही कह पायी थी. उसके हाथ में लहराती दसवी बोर्ड परीक्षा की मार्कलिस्ट और उसका दमकता चेहरा सबकुछ कह गया. इतना कि उसकी अनपढ़ अम्मी भी आसानी से उसका परीक्षाफल पढ़ गयी. महाराष्ट्र के वनबहुल गडचिरोली जिले के एक छोटे से गांव कोरची की यह कन्या, सन २००७ में अपनी लगन और मेहनत के बदौलत गणित और अंग्रेजी जैसे विद्यार्थीयोंमें अनुत्तीर्णता के सर्वाधिक कारक विषयोंको ना केवल मात कर गई, बल्कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की गुणात्मक उंचाई भी पा गई. प्लॅस्टिक–लोहालंगड़ का कचरा चुनते, मोलमजदूरी करते, अपने बच्ची के भविष्य के सपने संजोते उसके अम्मी–अब्बा गर्व से फुले न समायें. इलाके के महिला स्वयंसहाय्यता समुहोंने नसरीन शेख का विशेष सत्कार किया. आदर–प्रशंसा के नूर से चकाचौंध नसरीन अपने अम्मी–अब्बा के आँखों में गहराती मायुसी को देखते हुये, जानते हुये भी, पुरी विश्वास के साथ अगले पढ़ाई के सपने जीने लगी. आखिरकार ... ग्यारहवी में दाखिला लेने के अंतीम तारीख के करीब–करीब, उसके अम्मी–अब्बा ने बड़े बोझील मन से उसे स्कुल छोड़ कर कमाई में हिस्सेदार बनने के लिए कहा. ''बारहवी तक लड़कियों को फ़ीस माफ़ हैं'' उसने जैसेतैसे बचाव की कोशिश की. ''लेकिन बेटा! कपड़ेलत्ते, नोटबुक, किताबें, ... सब कैसे होगा?'' व्यवहारिक चिंतायें प्रबल थी. १७ वर्षीय नसरीन नन्हींसी बच्ची बनकर बिलखते हुये अम्मी की गोद में बिखर गयी.

पहाड़ी की ढ़लान पर घने झुरमुटों के साये तले, घुटनेभर पानी में नाले के किनारे खेकड़ों की टोह लेते शालिकराम नैताम ने अपने ६वी कक्षा के सहपाठीयों को करीब आते देखा तो हैरान रह गया. पहले तो उसने भाग जाने की सोची. फिर ना जाने क्यों रूका, और देखते रहा. एक के बाद एक, सारे बच्चे पानी में कुद पड़े और मस्ती करने लगे. शालिकराम भी उनमें शामील हो गया. 'क्यों ना रामलीला खेली जाये'. अच्छा प्रस्ताव था. शालिकराम को रावण बना दिया गया. रावण के दस मुँह थे. अत: शालिकराम के दोनो हाथ कंधे से सीधे रख कर एक मजबूत लकड़ी से बांध दिये गये. हाथोंपर दोनों ओर चार–पाच सागवन के पत्ते बांध दिये गये. याने शालिकराम अब दशमुखी रावण बन गया. जयजयकार होते इस 'रावण महाराज' की सवारी कोरची तहसील में जंगल की सीमा से सटे साल्हे गांव की स्कुल पहुंच गई. तब जाकर कहीं शालिकराम को रावण बनने का मतलब समझ आया. दोनो हाथ लकड़ी सें बंधे होते भाग जाना आसान नहीं था. फिर वहीं धूम–धाम. हमेशा की तरह शालिकराम ने मास्टरनीजी का जी भरने तक मार खाया, और तय कर लिया कि माँ की आँखों में आँसू आने तक का बचा मार घर जाके खायेगा. रोने की जरूरत उसे महसूस नहीं हुई.

शालिकराम अकेला नहीं है. हममस्तों की पुरी टोली हैं. ८वी कक्षा तक जैसे तैसे पहुंचने के बाद पिछले दों सालों से स्कुल की चारदिवारी छोड़ा हुआ नरेश होडी, और उसके नेतृत्व में ६वी कक्षा के जगतराम हिडामी, अनिल काटेंगे, और तेजुराम गोटा; इतना ही नहीं, आजकल दुसरी कक्षा का नन्हा राजु गोटा भी इनमें शामील हैं. स्कुल जाने रोज घर से निकलते ये बच्चे हफ्ते में एक–दो बार ही स्कुल में रह पाते हैं. लेकिन क्या वे शिक्षा ग्रहण नहीं करते? शायद उनकी तो पाठशाला कहीं और हैं.

फुर्तीले जंगली चुहों को वे पलभर में दबोचना सीखे हैं. नाले की रेती में उभरी हल्की सी लकीर भी उन्हें खेकडों का पता बता देती हैं. वे जंगल के अनेकों जीव–जन्तुओं की गतिविधीयाँ जानते हैं. उनसे जुड़ी कथा–कहानियां जानते हैं. वे लोग जंगल में हमेशा चिटीयों के झुंड के आसपास बैठते हैं, क्योंकि जंगल के कानून का जो पाठ उन्होंने पढ़ा हैं उस अनुसार सांप चिटीयों से दूर रहना पसंद करते हैं.

ये बच्चे केवल ज्ञान से पेट नहीं भरा करते. मछलियां, खेकड़ों, जंगली मेवों का पौष्टिक आहार वे करते ही हैं; साथ ही जमा किये जंगली मेवे साप्ताहिक या रोजाना बाजार में बेच भी आते हैं. याने व्यापारियों और ग्राहकों के स्वभाव पहचानने की शिक्षा भी शुरू हैं, और कमाई भी.

जिसके डंख मारने से हमारे शरीर पर शीतपित्त जैसे ददोरे निकल आते है, उस ततैया नामक बड़ी मख्खी को आप जानते ही होंगे. अक्सर हमारे घरों के दरवाजे की ओट में और बिजली के सॉकेट में यह मिट्टी का घर बनाती हैं. उसमें विविध इल्लीयों को बंद कर देती हैं, ताकि ततैया के बच्चे अंडे से बाहर निकलने पर उन्हें इल्लीयों का तयार भोजन मिले. इस ततैया का मधुमख्खी के छत्ते से भी बड़ा घरौंदा इन बच्चों ने जंगल में खोज निकाला. गांव के सभी बच्चों और इच्छुक प्रौढ़ों का उस जगह पर 'अध्ययन दौरा' आयोजित किया. वहां ततैया के घरौंदे का निरीक्षण करने के लिए सुरक्षित अंतर का तय मानक उन्होंने बनाया था. ततैया के आक्रमण से बचने के लिए और आक्रमण के स्थिती में उपचार की हिदायतें निरीक्षकों को दी जाती थी.

इसी बहाने मुझे इन बच्चों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. 'सौभाग्य' ही कहुंगा. क्योंकि मैं उनके प्रत्यक्ष अनुभूत ज्ञान से प्रभावित हूं. मुझे लगा कि यह बच्चे जिम कार्बेट, डॉ. सलीम अली, मारूती चितमपल्ली, डॉ. माधव गाडगील, जैसे मान्यवर जंगलविद् एवं जैवविविधताविद् की नामावली शायद बढ़ा सकते हैं.

परंतु! यदि देश में बच्चों के लिए मार खाने की स्पर्धा कोई आयोजित करता हो तो जरूर बताईयें. मेरा विश्वास है कि ये वहां स्वर्णपदक विजेता रहेंगे. उन्हें रोज तीनतर्फा मार खाने का अभ्यास हैं. स्कुल में मास्टरनीजी का, घर में अभिभावकों का, और गांव में ग्राम शिक्षा समिती सदस्यों का.

'आम्ही आमच्या आरोग्यासाठी' संस्था ने गडचिरोली जिले के कोरची तहसील में कोरची के आसपास के ६ गाव में अक्टुबर २००८ में किये गए सर्वेक्षण अनुसार ६ से १४ उम्र की २० लड़कियां और ३४ लड़के स्कुल से बाहर थे. इनमें से १३ लड़कियां तथा २० लड़कों ने स्कुल पढ़ने में दिलचस्पी नहीं का कारण बताया. १ लड़की अपने छोटे भाई–बहनों को संभालने के लिए स्कुल जाने से वंचित रह गयी. १ लड़की लंबी बिमारी की वजह से घर में ही है. ५ लड़कियां और १७ लड़कों ने घर की आर्थिक परिस्थिती को अपने स्कुल से बाहर रहने की वजह सामने लायी. 'अपेक्षा होमियो सोसायटी' नामक गैरसरकारी संस्था ने अपने मित्र संस्थाओं की मदत से अक्टुबर–नवंबर २००८ में बुलढाणा, चंद्रपूर, और अमरावती इन तीन जिलों के ८ तहसील में १३१ गांवों में सर्वेक्षण किया. ६ से १८ उम्र की १३१९ लड़कियां तथा १२९४ लड़कों को स्कुल से बाहर पाया. यह बच्चे खेतीकाम, गाय–भैसों की देखभाल, छोटे भाई–बहनों को संभालना, भीख मांगना, प्लॅस्टिक–कचरा चुनना, या फिर घर में ही रहना, बेवजह बाहर घूमना; इस तरह के कामों में लगे हैं. गैरसरकारी संघटन 'प्रथम' द्वारा प्रोत्साहित 'ॲन्युअल स्टेटस ऑफ एज्युकेशन रिपोर्ट २००५ रूरल' (असर ग्रामीण) के सर्वेक्षण अनुसार भारत में ६ से १४ उम्र के ६.६ प्रतिशत बच्चे स्कुल से बाहर होते हैं. इनमें से ३.७ प्रतिशत बच्चों को स्कुल में कभीभी दाखिला नहीं मिला हैं, और दाखील बच्चों में से २.९ प्रतिशत बच्चे 'ड्रॉप आउट' हुये हैं. जो बच्चे स्कुल में है वे बड़े खुश है और 'गुणवत्तापूर्ण' शिक्षा प्राप्त कर रहे है, ऐसा कतई नहीं. पाचवी कक्षा में पढ़ते छात्रों में से ५९.८४ प्रतिशत छात्र दुसरी कक्षा के लिए निर्धारीत कुछ बड़े वाक्यरचनाओं की कहानी पढ़ने में सक्षम हुये हैं. केवल ४३.४२ प्रतिशत छात्र दो अंकों का एक अंक से भागाकार और सामान्य घटाने के गणित कर सके.

'सर्व शिक्षा अभियान' की नयी शिक्षा नीति ने 'ड्रॉप आउट' बच्चों की संख्या शून्य कराने की कसम खाई हैं. शिक्षकों को शिकायत रहती है कि बच्चे स्कुल नहीं आते. इसके लिए वह ग्राम शिक्षा समिती तथा अभिभावकों को दोषी ठहराते हैं. यह लोग भी इसमें अपना दोष समझते हैं. दोनो हाथों को काम मिलने पर ही हाथ और मुँह का मिलाप संभव होता हैं, ऐसी जिंदगी जीते माँ–बाप के लिए तो स्कुली शिक्षा का मतलब 'साहाब' बनना हैं. स्कुल पढ़ कर उनके बच्चे इस तरह की मेहनतकश जिंदगी के बजाये खुर्चीपर बैठे–ठाले 'वेतनभोगी' बन जायेंगे, ऐसे सपने होते हैं. उनकी 'आज' की मेहनत अपने बच्चों का 'कल' सुधारने के लिए ही तो हैं. ग्राम शिक्षा समिती के सदस्यों को किसी बच्चे ने स्कुल न जाने से बड़ी चोट लगती हैं. यह उनके सदस्यत्व का अपमान होता हैं. उनके 'अधिकार तथा कर्तव्य–पालन' का कसूर होता हैं. अत: सभी जुटे होते हैं; जोर–जबरदस्ती–मारापिटी के सहारे ही सही, स्कुल से बाहर निकले बच्चों को वापिस स्कुल पहुंचाने.

८६वे संविधान संशोधन एवं उस पर आधारीत शिक्षा का अधिकार विधेयक २००८ ने ६ से १४ उम्र के बच्चों के लिए 'मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा' का नारा लगाते हुये शिक्षा को मुलभूत अधिकार बनाने में पहल की हैं. इसके तहत प्राथमिक शिक्षा और उसमें बच्चे स्कुल से बाहर न हो पाये यह अब संवैधानिक रूप से अनिवार्य हो गया हैं.

कानुनी मदत हो ना हो, गैरसरकारी संघटन बच्चों को स्कुल पहुंचाने के मुहिम में बरसों से जुटे हैं. 'स्कुल के बाहर, वह बालमजदूर' ऐसा नारा देते हुये बच्चों की ओर से, बच्चों के शिक्षा अधिकार का दायित्व लिए, अनेक गैरसरकारी संघटन 'ड्रॉप आउट' को 'ड्रॉप' करने के अभियान में लगे हैं.

लेकिन एक बुनियादी सवाल इसमें उभरता हैं; क्या स्कुल से बाहर रहते नसरीन और शालिकराम जैसे सभी बच्चे स्कुली 'ड्रॉप आउट' हैं?

''नहीं!'' प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ. अनिल सद्गोपालजी बड़े ही प्यार से समझाते है कि ''कोई बच्चा 'ड्रॉप आउट' (धीरे से बाहर) नहीं हुआ करता. वह या तो 'फोर्सड् आउट' (जबरन बाहर) होता है या 'वॉकड् आउट' (स्वेच्छा से बाहर) होता है.'' 'विज्ञान आश्रम' के शिक्षा गतिविधीयों पर बनी डॉक्युमेंटरी फिल्म में डॉ. सद्गोपालजी को यह बात कहते दिखाया गया हैं.

नसरीन 'फोर्सड् आउट' हुई है. किसी बच्चे को 'फोर्सड् आउट' कराने के आर्थिक कमजोरी, सामाजिक मान्यतायें, राजनैतिक अस्थिरता, स्वास्थ्य सुविधा का अभाव, परभाषा में पाठ्यक्रम, कई कारण हो सकते है. अधिकांशत: लड़कियां आसानी से 'फोर्सड् आउट' की जाती है.

शालिकराम और उसकी टोली 'वॉकड् आउट' है. चारदिवारी में बंद स्कुल का 'फार्म', बच्चोंके नैसर्गिक परिवेश एवं व्यक्तिगत अभिरूची से भिन्न पाठ्यक्रम की शिक्षा, बच्चोंने सीखने लगने के बजाये उन्हें सीखाने की शिक्षक केंद्री शिक्षा पद्धती, कई कारण होते है जिनके विद्रोह में बच्चे 'वॉकड् आउट' करते हैं. स्वयं गुरूदेव रविन्द्रनाथ टागोर ने स्कुली जीवनसे 'वॉकड् आउट' किया था और अपने कई कहानियों के पात्रों से भी करवाया.

गड़ेरिया जैसे घुमंतू जनजातीयों के बच्चे, 'तारे ज़मीन पर' फिल्म से व्यापक चर्चा का मुद्दा बन सके 'डिसलेक्सिया' जैसे विशिष्ट लक्षणसमुह के साथ जीते बच्चे, एवं विकलांग बच्चे, वास्तविक तौर पर 'वॉकड् आउट' करना चाहते हैं; लेकिन हम उन्हें वस्तुत: 'फोर्सड् आउट' करते हैं; और उनके 'ड्रॉप आउट' होने पर चिंता जताये जाते हैं.

इनके अलावा हमारी एक बड़ी ही अजीब सोच है. गांव में जैसे केवल कम उम्र के ही बच्चे रहते हैं. हमने उच्चतर शिक्षा की सुविधा केवल शहरों में स्थित स्कुलों में ही कर रखी है. विश्वविद्यालय तो शहरों में ही होते है. लेकिन गांव में नवजात शिशु से लेकर मरणासन्न वृद्ध तक हर उम्र के लोग रहते हैं. तो फिर उच्च शिक्षा के लिए ग्रामीणों का जबरदस्ती स्थलांतरण क्यों? बच्चों को 'फोर्सड् आउट' कराने की यह भी हमारी एक तरकीब ही है.

बच्चों को आर्थिक–सामाजिक कारणों से 'फोर्सड् आउट' होने से रोकने में 'सर्वसमावेशक स्कुल पद्धती' सक्षम सिद्ध हो सकती थी. ''मनुष्य समाज में समता को मान्यता देनेवाले (इगॅलिटेरियन) तथा एकात्मिक (इंटेग्रेटेड) समाज की निर्मीती प्रोत्साहित करने के लिए समाज के विविध सामाजिक वर्ग व समुहों को इकठ्ठा लाना;'' इस दृष्टीकोनसे राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (१९६४–६६) ने 'कॉमन स्कुल सिस्टम ऑफ पब्लिक एज्युकेशन' की सर्वप्रथम सिफारिश की थी. राष्ट्रीय शिक्षा नीती १९६८ और १९८६ में इस सर्वसमावेशक स्कुल पद्धती की ओर आगे बढ़ने का घोषवाक्य प्रमुखता से समाविष्ट था. लेकिन राजकीय नेताओं के पुनर्वास के लिए उन्हें 'शिक्षा महर्षी' बनाना राजकीय अनिवार्यता हो जाने से, तथा 'शिक्षा का नीजीकरण एवं व्यापारीकरण' नीती को बढ़ावा देने के लिए सर्वसमावेशक स्कुल पद्धती राष्ट्रीय शिक्षा नीतीसे 'ड्रॉप आउट' (दर असल 'फोर्सड् आउट') हो गयी.

बच्चों की स्कुली शिक्षा जारी रखने के लिए शिक्षक, अभिभावक, ग्रामवासी, शहरवासी, गैरसरकारी संघटन, सभी के प्रयास 'फोर्सड् आउट' और 'वॉकड् आउट' की समझ बिना अधुरे रह जाते हैं.

महिला स्वयंसहायता समूह तथा 'आम्ही आमच्या आरोग्यासाठी' नामक गैरसरकारी संस्था ने नसरीन की आर्थिक सहायता की, तो उसकी पढ़ाई जारी रह सकी. हांलाकि इसके लिए नसरीन को दुगनी मेहनत करनी होगी. संस्था ने प्रदान किये सिलाई मशीन की सहायता से उसने अपने शिक्षा खर्चे का भार स्वयं उठाना है. अब आप इसे बालमजदूरी कहीये या हमारे दरिद्री जीवन की वास्तविकता? नसरीन को पढ़ाई और कमाई एक साथ करनी ही होगी.

लेकिन उधर शालिकराम और उसकी टोली? उनके लिए तो कोई मदत उपलब्ध नहीं. उन्हें चाहिए ऐसा पाठ्यक्रम जो वनमिती के आधार पर गणित सीखलाये, जैवविविधता के आधार पर भाषा सीखाये, निसर्ग के नियमों के आधार पर नीति सीखाये, नदी–नाले की बनावट से भूगोल सीखाये, दादा–दादी के चेहरे की झुरियों से इतिहास पढ़ाये, ... अध्यापक ऐसा जिसे नदी की डोह में डूबकर भी तरना आता हो, पक्षीयों के आवाज की नकल करनी आती हो, पेड़–पौधों की पहचान हो, जंगल में मीठे फलों की जगह मालूम हो, पत्थरों से दोस्ती हो, ... तौबा–तौबा!

आज से सौ साल पहले, सन १९०९ में 'हिन्द स्वराज' नामक एक अद्भूत किताब भारत में प्रकाशित हुई थी जिसने प्रस्थापित मान्यताओं को बिनतोड़ तार्किक दलीलों से नकारा. शिक्षा पद्धती के लिए भी एक अलग सोच रखी. जिस 'मुफ्त एंव अनिवार्य शिक्षा' को कानुनी रूप देने की आज बात की जा रही है, उसे श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड ने उन दिनों अपने बडोदा राज्य में लागू किया था. इस निर्मल हेतु के लिए उन्हें धन्यवाद देने के बावजूद भी उनके प्रयासों के परिणामों पर चिंता जताते हुये, इन प्रयासों को व्यर्थ बताकर गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज' द्वारा सभी को चौंका दिया है. शिक्षा के उद्देश संबंधी गांधीजी ने उपस्थित किये सवाल आज भी विचारणीय हैं.

गांधीजी के शिक्षा विषयक चिंतन का विस्तार आगे चल कर 'नई तालीम' में हुआ. प्रसिद्ध सामाजिक वैज्ञानिक डॉ. अभय बंग ने मराठी भाषा में लिखीत अपने संस्मरण 'शिक्षणाचे जादूभरे बेट' में 'नई तालीम' के विशेषताओं का बखुबी वर्णन किया और इस जादूमय द्वीप के खो जाने पर खिन्नता प्रकट की है. भोजन पकाते हुये सब्जीयों के गुणधर्म और भोजन का अर्थशास्त्र सीखना, गायों के लिए पीने का जल प्रबंध करने हेतु टंकी बनाते हुये गणित सीखना, पढ़ाई के विषयों में गती के आधार पर एक ही समय अलग–अलग विषयों के लिए अलग–अलग कक्षाओं में होना, डॉ. अभय बंग सेवाग्राम में 'नई तालीम' के सबकुछ अद्‌भूत जादूमय द्वीप में पढ़े हैं. इसमें हर बच्चे के अभिरूची अनुसार पढ़ाई का प्राविधान होता था. बच्चों के ललाट पर 'पास' या 'फेल' का ठप्पा लगने के बजाये और–और सीखने की, सीखते रहने की, साथ ही व्यवहार–व्यवसाय कुशलता की भविष्यरेखायें उभरने लगती. गांधीजी ने अंग्रेजी बनावट की जिस शिक्षा पद्धती को छोड़ने की पुरज़ोर वकालत की, उसी शिक्षा पद्धती को हमारी देशी सरकार 'सुधारीत शिक्षा नीति' और 'सर्वसमावेशक शिक्षा अभियान' के नामसे हमपर इस तरह लादते रही कि हमने 'नई तालीम' को 'पुरानी' बनाकर दरकिनार कर दिया.

पुणे जिले में स्थित 'विज्ञान आश्रम' ने डॉ. श्रीनाथ कलबाग के मार्गदर्शन में इसी नई तालीम को अलग अंदाज से पुनर्जीवित किया. ग्रामीण बच्चों में स्थित मशीनरी तथा खेती उपकरणों के प्रती रूची को आधार बनाकर उन्होंने पाठ्यक्रम विकसित किया है. आम शिक्षा पद्धती ने 'दसवी फेल' का ठप्पा लगाये अनेको बच्चों को 'विज्ञान आश्रम' ने 'शिक्षीत व्यक्ती' का दर्ज़ा दिलाया और उनकी जिंदगी में आत्मविश्वास लाया. कई अन्य साथी इसी तरह खेती, कारागिरी, आदि माध्यमोंसे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का पाठ्यक्रम विकसित करने में लगे हैं. उनके प्रयास अभिनंदनीय हैं. अपितु ऐसे प्रयास बढ़ते रहना चाहिये. इतने की हर बच्चे के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम हम विकसित कर सके.

हमारे यहां पुरानी मान्यता है कि स्वाती नक्षत्र में जब बारिश की कोई बूंद सीप के मुंह में जा पड़ती है तो वह मोती बन जाती है. इसका अर्थ यहीं कि हर बूंद मोती बनने की क्षमता रखती है. कमी तो बस सीप की है. हर बूंद को सीप मिल जाये तो क्या कहना!

मेरे देश के सारे बच्चे अपने आप में अनुठे हैं. होनहार हैं. मोती जैसे अनमोल है. अनंत संभावनाओं से भरे हैं. कमी तो बस उनकी संभावनाओं को शिक्षित करने वाली स्कुलों की हैं. हर बच्चे के अनुठेपन के मद्देनज़र अनुठे पाठ्यक्रमों की कमी हैं. शिक्षा की अनिवार्यता के नाम पर किसी एक ही तरह की स्कुल और एक ही तरह के पाठ्यक्रम की अनिवार्यता क्यों? हर बच्चे की अपनी स्कुल हो, पाठ्यक्रम हो, बच्चे जितने ही होनहार शिक्षक हो; फिर देखिये. ढूंढते रह जाओगे! ना कोई 'फोर्सड् आउट' होगा; ना कोई 'वॉकड् आउट' होगा; और ये न हो तो भला कोई 'ड्रॉप आउट' क्यों होगा?

'हिन्द स्वराज' के सौ साल उपरान्त मैं सपना देखता हूं ... 'शिक्षा स्वराज' – हर बच्चे के लिए शिक्षा का प्राविधान, याने हर बच्चे के उसके अपने प्रवृत्तीयों के अनुकूल स्कुल, पाठ्यक्रम तथा शिक्षक का ऐसा प्राविधान जो गांव/बस्ती से वैश्विक स्तर तक मनुष्य समाज में समता को मान्यता देनेवाले समतामूलक (इगॅलिटेरियन) तथा एकात्मिक (इंटेग्रेटेड) समाज की निर्मीती प्रोत्साहित करने के साथ हर व्यक्ती को 'स्वयं पर राज' प्रस्थापित करने में भी कारगर होगा.

आईये! आप सभी साथ आये! आपका साथ हो तो हर बूंद मोती बन सकती हैं. हमारे हर गांव, हर बस्ती में 'शिक्षा स्वराज' हो सकता हैं. प्यारे बच्चों को प्रणाम करते हम इस 'अनिवार्य' काम में जुट जाये.

दिनांक २५ जनवरी २००९

लेखक 'गावसमाजसंघटन से शाश्वत सुरक्षित आजीविका' संकल्पना के लिए 'आम्ही आमच्या आरोग्यासाठी' एवं 'स्वराज्य–मित्र' संस्था के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है.
संपर्क पता : डॉ. राहुल बैस, 'स्वराज्य–मित्र', स्थान एवं पोस्ट अंजनगांवबारी, तहसील एवं जिला अमरावती. पिन–४४४७२७. भ्रमणभाष क्र. ९४२३१०२९८३. ईमेल : rahulbais@rediffmail.com